अङ्क-२८
जुलाई-दिसम्बर २०१६

वेदविद्या
ISSN-२२३०-८९६२

प्राचीन भारतीयवाङ्मय में प्रतिबिम्बित कृषिव्यवस्था

डॉ. अरुणकुमार मिश्र

वेद देवकाव्य है जो समस्त ज्ञानराशि का मूल तत्त्व है। उसके विषय में कहा जाता है कि - **'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'**[१] इसका अभिप्राय यह है कि उसे किसीने बनाया नहीं। वह ऋषियों को दृष्ट हुआ, इसीलिए ऋषियों को द्रष्टा कहते हैं - जैसे महर्षि वाल्मीकि[२] को अनुष्टुप् छन्द की स्वतः अनुभूति हुई। तभी से उन्हें ऋषित्व प्राप्त हुआ। इसका दूसरा अभिप्राय यह है कि यह ज्ञानरूप है। इसीलिए देश तथा काल से बद्ध नहीं है। इसका अभिप्राय यह भी है कि वह अव्यक्त है, सर्वत्र व्यापक है और वह केवल ऋषि-प्रज्ञा में व्यक्त होता है। इसी हेतु इस प्रज्ञा को ऋतम्भरा-प्रज्ञा कहते हैं। भर्तृहरि ने इस शब्दमयी अभिव्यक्ति को[३] अनादिनिधन, ब्रह्म तथा अक्षर माना है।

मानव-सभ्यता का यही वेद मूल है। सृष्टि के प्रारम्भ से इसी अन्तर्मुख अभिव्यक्ति विद्या से आदिकाल से लेकर अब तक मनुष्य की जीवन-यात्रा के सभी उपकरण वेद की ही देन हैं। विधि-निषेध द्वारा इसी ज्ञान से मनुष्य अपने कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय करता है। जीवन धारण करने के पश्चात् मानव की पहली आवश्यकता भोजन है। जिसके लिए वह तरह-तरह की खोज या अन्वेषण करता है। इसी क्रम में मनुष्य ने यान्त्रिक, तान्त्रिक अथवा शास्त्रीय माध्यमों से विभिन्न प्रकार की खोज की। भारतवर्ष भी प्रारम्भ से ही कृषि प्रधान देश रहा है क्योंकि वेद ने ही प्रथम कर्तव्य के रूप में निर्देश किया है-

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः॥[४]

ऋग्वेद के इस मन्त्र में एक जुवाँ खेलने वाले की भर्त्सना करते हुए उत्साहवर्धक शब्दों से प्रेरित किया गया है कि हे जुआरी! जुआँ मत खेल; कृषि कार्य करो, इस धन को कृषि कार्य में लगाओ, वहाँ तेरी गायें हैं। वहाँ तुम्हारी पत्नी है, इसे श्रेष्ठ सविता ने स्वयं हमसे कहा है। इससे कृषि की प्राथमिकता और सर्व

---

[१] अथर्ववेदः
[२] मा निषाद! प्रतिष्ठात्वमगमः शाश्वतीः समाः। (वा.रामायणम्)
[३] अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्तते अर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ वाक्पदीयम्, ब्रह्मकाण्डम्।
[४] ऋग्वेदः १०/३४/१३

व्यवहार क्षमता निश्चित होती है, इसके आधार पर इसकी व्यापकता भी कल्पनीय है। वेद, सूत्र, उपनिषद्, स्मृति, रामायण, महाभारत, और पौराणिक ग्रन्थों में कृषि विद्या के स्वरूप के स्पष्ट सङ्केत मिलते है।

जिसमें उत्तम कृषि के लिए आवश्यक निर्देश प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में स्पष्टरूप से उल्लिखित मन्त्र है-

ते कृषिं च सस्यं च मनुष्याः उपजीवन्ति ।
कृष्टराधिरूपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥[५]

मन्त्र में कृषि तथा कृषक एक दूसरे के उपकारक हैं जो सस्य के आश्रय से ही जीवन यापन करते है। हमारे राष्ट्रीय गीत में भी आता है। **"सुजलां सुफला सस्यश्यामलाम्"**[६] सुसंस्कृत कृषि के लिए वेदों में प्रयोग एवं सिद्धान्त-दोनों के उल्लेख प्राप्त हैं। यजुर्वेद के अनुसार **"अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्"**[७] मन्त्र में भूमि को बोये गये बीज को उर्वरत्व प्रदान करने की अक्षय्य क्षमता है। इस मन्त्र से स्पष्ट होता है । यजुर्वेद में ही उल्लिखित है कि **कृषिश्च मे, वृष्टिश्च मे०**[८], जिससे ज्ञात होता है कि वेदकालीन समाज स्वयं ही कृषि-कार्य की ओर उन्मुख होता है तथा कृषि-कार्य करके अपने को उन्नत करता है। यजुर्वेद में ही आता है **"सुसस्याः कृषीस्कृधि"**[९] इस विवेचन से यह कहा जा सकता है कि परम कृपालु परमात्मा ने मानव को कृषि के लिए उत्पन्न किया है। इससे भी वेद-प्रतिपादित कृषि की श्रेष्ठता व प्रेरणा को बल प्राप्त होता है। कृषिविद्या के इतिहास के लिए पूर्व के आचार्यों एवं साक्षात्कृतधर्माण ऋषियों के सङ्ग्रहों में भी उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे ऋषि पराशर द्वारा रचित ग्रन्थ 'कृषिपराशर' एक महनीय कृति है। जिसमें उन्होंने कहा है-

प्रजापतिं नमस्कृत्य कृषिकर्मविवेचनम्।
कृषकाणां हितार्थाय ब्रूते ऋषि पराशरेः॥[१०]

मङ्गलाचरण में आचार्य ने प्रजापति को नमस्कार करके मैं कृषकों के हित के लिए कृषिकर्म का विवेचन करता हूँ।

---

[५] अथर्ववेदः ८/१०/२४
[६] आनन्दमठ - बङ्किमचन्द्र
[७] यजुर्वेदः २३-४६
[८] यजुर्वेदः १८-९
[९] यजुर्वेदः ४-१०
[१०] कृषिपराशरः १

इस ग्रन्थ में वैदिक कृषि-व्यवस्था एवं किस प्रकार से कृषि के द्वारा समाज को एवम् अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया जा सकता है ? का सम्पूर्ण ज्ञान हमें प्राप्त होता है। वेदचतुष्टयी के आधार पर सम्पूर्ण सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को भी जब लक्ष्मी साथ छोड़ देती है तो उदरपूर्ति हेतु भिक्षाटन करना पडता है।

चतुर्वेदान्तगो विप्रः शास्त्रवादी विचक्षणः।
अलक्ष्म्या गृह्यते सोह्यपि प्रार्थना लाघवान्वितः॥[११]

इस शास्त्रवचनानुसार कृषि ही ऐसी प्रवृत्ति है जो मनुष्य की प्रत्येक दुष्प्रवृत्तियों से रक्षा करती है। यहाँ तक कि भिक्षावृत्ति को भी छोड़ने में सहायक होती है। जिसका स्पष्ट सङ्केत कृषि से मिलने वाली सुख और समृद्धि से मिलता है। कहा है-

एकया च पुनः कृष्या प्रार्थको नैव जायते ।
कृष्यन्वितो हि लोकेस्मिन् भूयादेकश्च भूपति ॥[१२]

कृषि हेतु कृषि कर्ता की पात्रता से अन्य सुखों की पात्रता श्रेष्ठ होती है। अतः सभी सुख-समृद्धि को प्राप्त करने के लिए कृषि की पात्रता की प्रथम आवश्यकता है। उसके पश्चात् सभी सुख सहजता से प्राप्त हो ही जाते हैं।

सुवर्णरौप्यमाणिक्य वसनैरपि पूरिताः।
तथापि प्रार्थयन्तयेव कृषकान् भक्तृष्णया॥
कण्ठे कर्णे च हस्ते च सुवर्णं विद्यते यदि ।
उपवासस्तथापि स्यादन्नाभावेन देहिनाम्॥[१३]

सभी प्रकार के सुख-समृद्धि से युक्त होने पर भी जन सुख प्राप्त नहीं कर सकते, यदि उनके पास अन्न का अभव हो। वे व्यक्ति जिसके पास स्वर्ण, मणि, वस्त्रादि से पूर्ण होते हैं। फिर भी अन्न के लिए कृषकों से ही भिक्षा मागते हैं, क्योंकि अन्नाभाव में कण्ठ में हार, हाथों में कङ्कन और कानों में कुण्डल आदि आभूषण रहते हुए भी उनको भूखे का जीवन-यापन करना पड़ता है। जन के जीवन और बल के लिए अन्न ही साधन है, क्योंकि **'अन्नं हि धान्यं सञ्जातं धान्यं कृष्या विना न च। तस्मात् सर्वं परित्यज्य कृषिं यत्नेन कारयेत्॥'**[१४]

अतएव कष्ट प्राप्त होने पर भी कृषि-कर्म ही श्रेष्ठ है। अतः कहा गया है कि कृषकों का जीवन ही जीवन है। अन्य सभी दूसरों की वन्दना करके भोजन पाकर उसके पीछे चलने वाले ही हैं। कृषक राष्ट्र

[११] कृषिपराशरः २
[१२] कृषिपराशरः ३
[१३] कृषिपराशरः ४-५
[१४] कृषिपराशरः ७

की आत्मा है, हमारा है, हम कृषक के हैं। मलयालम-कवि वल्लतोल ने अपने कृषक-जीवन की कविता में कृषि के महत्त्व का स्पष्ट उल्लेख किया है जिसका अनुग्रह साम्राज्य-श्री को राजदण्ड ऊँचा करने और संन्यासी जीवन को योगदण्ड उठाने तथा वाणिज्य-लक्ष्मी को चाँदी-सोने की मुद्राओं को अलग करके गिनने के लिए भुजबल प्रदान करता है, उसको मेरा प्रणाम। हे कृषीश्वरी ! वेद भी तुम्हारी महिमा गाता है।[१५] नहीं-नहीं जो वाक्य तुम्हारी प्रशंसा और पूजा करता है, वही वेद हो सकता है। कहा है-

कृषिर्गावो वणिग्विद्या स्त्रियो राजकुलानि च।
क्षणेनैकेन सीदन्ति मुहूर्त्तमनवेक्षणात्॥[१६]

कृषि, गाय, वाणिज्य, विद्या, पत्नी और राजपाट को क्षण की आसावधानी भी नष्ट कर देती है। अतः क्षणमात्र के लिए भी कृषिक संरक्षणकार्य से स्वयं वियुक्त हो तो उचित कृषि-फल की प्राप्ति करना सम्भव नहीं होता है।

कृषि शब्द व्युत्पत्ति अर्थ - कृषि शब्द कृष् धातु से बना है - कृष् + इक् - कृषि अर्थात् कृष् धातु में कित् औणादिक[१७] प्रत्यय लगाकर होती है। जिसका मूल व्युत्पत्तिपरक अर्थ है कर्ष = कर्षण करना, हल जोतना । ऋग्वेदकाल से ही कृषि शब्द मूल अर्थ में न रहकर सम्पूर्ण कृषि-कर्म के रूप में प्रयुक्त हो रहा है। इसलिए वेद के मानव को कृषि-कर्म में प्रवृत्त होने के लिए यह प्रेरक सन्देश आज भी प्रयुक्त हो रहा है। **अक्षैर्मादीव्यः कृषिमिति कृषस्व।**[१८] पतञ्जली मुनि के समय में कृष् धातु का व्यापक अर्थ केवल कर्षण या हल चलाना नहीं, अपितु कृषक कृषिकर्ता की व्यवस्था, बीज तथा बैलों के प्रति विधान करता है वह भी 'कृषि' शब्द का अर्थ है।

नानाक्रियाः कृषेरर्थः॥
नावश्यं कृषिर्विलेखने एव वर्तते॥
कि तर्हि प्रति विधानेपि वर्तते॥
यदसौ भक्तबीज बलीवर्दः प्रति विधानं करोति सोपि कृष्यर्थः॥[१९]

यजुर्वेद तथा शतपथब्राह्मण में 'कृषि' शब्द का विस्तृत अर्थों में सम्पूर्ण कृषि-कर्म की ओर इङ्गित करता है।

---

[१५] तिरवल्लुर (तिरक्कुल १०३१, १०३३,)
[१६] कृषिपराशरः ८१
[१७] सर्वधातुभ्यः इन इगुपधात् कित् उणादि सूत्रम् ४७१३, ४७६५
[१८] ऋग्वेद १०/३४/१३
[१९] पा. महाभाष्यम् ३/१/२६

कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।[२०]

यजुर्वेद में आचार्य महीधर ने कृषितत्कृत धान्य सिद्धः अर्थ भी किया है।

'कृषन्तः वपन्तः लुनन्तः मृणन्तः' आदि सभी क्रियाओं अर्थात् कृषि शब्द का अर्थ कृषि-कर्म की व्यापकता के अर्थ में ही उल्लेख मिलता है। पञ्चतन्त्र में कृषि वर्षा के बिना कष्टदायक माना गया है।

कृषिःक्लिष्टऽवृष्टया[२१], महाभारत में भी कृषि-कर्म के विषय में उल्लेख प्राप्त होता है - **पण्यानां शोभनं पण्यं कृषीणां बाधते कृषिः। बहुकारं च सस्यानां बाह्येवर ह्यं तथा गवाम्।**[२२] कृषि के लिए कर्षण करना उत्तम माना जाता है और सस्य को निराना तथा वहनों में बैल का वाहन उत्तम माना गया है। **'निस्तृणामहि कृषाणां कृषिः कामदुग्धा भवेत्'**[२३] अर्थात् परिश्रमपूर्वक निराई कर्म करते हुए कृषि-कार्य करे। पूर्वाञ्चल की एक प्रसिद्ध उक्ति है जिसमें कृषि-कर्म को सर्वोत्कृष्ट माना गया है।

उत्तम खेती मध्यम बान। निखिद् चाकरी भीख निदान॥[२४]

डॉ.अरुण कुमार मिश्र
वेदप्राध्यापक
राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्
श्रीरणवीर-परिसर, जम्मू

[२०] यजुर्वेदः १८/९
[२१] पञ्चतन्त्रम् १/११
[२२] महाभारतम् शान्ति १८६/२०
[२३] कृषिपराशरः १९२
[२४] लोकोक्ति